''छोटानागपुर क्षेत्र के वृहत पाषाणिक संस्कृति का पुरातात्विक अध्ययन''

इतिहास विषय में एम0 फिल0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध सारांश

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय

शोधार्थी

नीरज कुमार

नामांकन संख्या 1234/19

शोध निर्देशक

डॉ0 सिद्धार्थ शंकर राय

असिस्टेन्ट प्रोफेसर

इतिहास विभाग

अम्बेडकर स्कूल फॉर सोशल सांइसेस

बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

विद्या विहार, रायबरेली रोड़ लखनऊ–226025 उ0प्र0

2021

शोध–सारांश

पुरातात्विक साक्ष्य के रूप में प्राप्त भौतिक अवशेषों के आधार पर ज्ञात, ऐसी संस्कृति जो अतीत के मानवीय संज्ञानात्मक समझ की समृद्ध स्तर को दर्शाती है, ऐसी संस्कृति जिसका संबंध स्वर्ग–नरक अवधारणा, पूर्वजन्म अथवा मृत्यु पश्चात् नवजन्म, पूर्वज आराधना एवं स्मृति–शिला के रूप में स्थापित वृहत पत्थरों व कब्र में 'मृतक' तथा 'मृतको की अस्थियों' को दफनायें जाने की साझी परंपरा से है, ''महापाषाणिक परंपरा'' कहलाती है।

महापाषाणिक परंपरा केवल मृतकों को दफनाने की ही संस्कृति तक सीमित नहीं थी अपितु इस काल के मानव द्वारा व्यापक तौर पर लौह प्रयोग एवं कृष्ण लोहित मृदभांड का प्रयोग किये जाने के प्रमाण मिलने लगे थे। तब का मानव सामाजिक जीवन कृषि कार्य की ओर उन्मुख हो चुका था साथ ही साथ शिकार एवं संग्रहण के कार्य को पूर्णतः त्याग भी नहीं किया था। यह संस्कृति मनुष्य के समय के साथ होने वाले परिपक्व अभिवृत्ति के होने का संदेश देता है, जहॉ मानव की जीवन एवं मरण संबंधी अवधारणा व इससे सम्बन्धित महत्व से अवगत हो चुका था।

महापाषाणिक संस्कृति कहॉ से आयी? वे कौन लोग थे, जो इस परंपरा का अनुपालन कर रहे थे? कब से परंपरा का व्यवहार में अनुपालन आरंभ किया गया? इस सभी प्रश्नों के उत्तर तलाशने हेतु विभिन्न मानवशास्त्रियों, पुरातत्वविद्ो एवं इतिहासकारों ने व्यापक अध्ययन करना प्रारम्भ किया। औपनिवेशिक काल से ही कर्नल मैकंजी, फर्ग्यूसन, मिडॉस टेलर, हैमनड्राफ, ई0टी0 डाल्टन, वी0 इल्वीन एवं अन्य महत्वपूर्ण और औपनिवेशिक अधिकारियों ने भारत के विभिन्न हिस्से से प्राप्त महापाषाणिक संस्कृति पर प्रकाश डाला।

स्वतंत्रता पश्चात् वी0डी0 गार्डेन चाइल्ड, मॉर्टिमर व्हीलर, वी0डी0 कृष्णा स्वामी, एन0 आर0 बनर्जी, के0 एन0 दीक्षित, ए0डी0 सुन्दर, गुरूराजराव, एस0वी0 देव, के0पी0

राव, यू0एस0 मूर्ति इत्यादि अध्ययनकर्ताओं महापाषाणिक संस्कृति के विभिन्न आयामों पर अध्ययन पर अध्ययन कार्य सम्पन्न किया।

आश्चर्यजनक रूप से लौह–पूर्व युग व नवपाषाण–ताम्रपाषाण युग से संबंधित महापाषाणिक संस्कृति वर्तमान में भारत के विविध क्षेत्रों में विभिन्न जनजातीय समुदायों द्वारा आज भी अनवरत् रूप से जीवंत परंपरा के रूप में अनुपालन किया जा रहा हैं। शोध अध्ययन का विषय मूल इस जीवंत परंपरा के अध्ययन एवं इसके अतीत के सांस्कृतिक व पारंपरिक महत्व पर आधारित है। शोध–क्षेत्र का मुख्य केन्द्र छोटानागपुर पठारी भाग में निवास करने वाले तत्कालीन जनजातियों एवं उनके द्वारा अनुप्रयोग में लाये जाने वाले महापाषाणिक परंपरा के अध्ययन पर आधारित है। भौगोलिक रूप से अध्ययन कार्य में प्रमुख रूप से 'झारखण्ड राज्य' को सम्मिलित किया गया है। हालॉकि छोटानागपुर पठार का विस्तार पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, उड़ीसा एवं उत्तर प्रदेश तक हैं। छोटानागपुर पठार पूर्वी भारत का पठार है तथा केन्द्रीय उच्च भूमि का पूर्वी विस्तार है।

शोध कार्य को संपादित करने के लिए परिकल्प–निग्मनात्मक विधि, मध्य श्रेणी सिद्धान्त एवं ऐतिहासिक विधि जैसे शोध प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। साथ ही महापाषाणिक स्थलों के प्रत्यक्ष अवलोक के आधार पर अध्ययन को प्राथमिक स्रोत के दृष्टिकोण से अत्यन्त बल प्रदान किया गया हैं। ध्यान देने योग्य तथ्य है कि दक्कन क्षेत्र एवं दक्षिण भारत की महापाषाणिक परंपरा से संबंधित भौतिक साक्ष्यों को व्यापक अध्ययन किया गया है। उत्तर भारत, विंध्य क्षेत्र एवं उत्तरी–पूर्वी भारत के संदर्भ में भी महापाषाणिक संस्कृति का व्यापक अध्ययन किया गया है किन्तु छोटानागपुर से संबंधित महापाषाणिक संस्कृति के संदर्भ में अत्यन्त न्यून कार्य संभव हुए है। इस क्षेत्र में शोध कार्य की व्यापक संभावनाओं से इंकार नही किया जा सकता हैं।

हालांकि यह बताना आवश्यक है कि वी0डी0 कृष्णा स्वामी, एन0आर0 बनर्जी, वी0के0 थापर इत्यादि लेखकों ने अत्यन्त सीमित तौर पर छोटानागपुर में अभ्यास में लाये जाने वाली महापाषाणिक संस्कृति पर प्रकाश डाला हैं।

सर्वप्रथम ई0टी0 डाल्टन (1867) ने रॉची जिले में स्थित चोकाहातू नामक महापाषाणिक स्थ के अध्ययन का विवरण दिया। 7,000 से भी अधिक महापाषाणिक समाधियॉ चोकहातू से प्राप्त हुए। इसके पश्चात् एस0सी0 रॉय (1912) ने 'द मुंडाज एवं देयर कंट्री'' नामक पुस्तक में छोटानागपुर क्षेत्र में मुंडा जनजातियों द्वारा तत्कालीन समय में लाये जाने वाली अनुष्ठान परंपरा एवं महापाषाणिक परंपरा का उल्लेख किया। वी0 वॉल (1872) ने 'द मान्यूमेन्ट इन द डिस्ट्रिक ऑफ सिंहभूम में 'हो' जनजाति द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले महापाषाणिक परंपरा का उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त पी0आर0टी0 गॉर्डेन ने 'द खासी' (1914) नामक पुस्तक में खासी जनजाति एवं छोटानागपुर के मुंडा एवं हो जनजातियों का उल्लेख किया जो तत्कालीन समय में भी अपने अतीत की महापाषाणिक परंपरा का अनुपालन कर रहे थे।

छोटानागपुर के मुंडा, हो व उरॉव जनजाति के अतिरिक्त वी0 इल्विन (1980) ने उड़ीसा के 'बोंडो' जनजातियों द्वारा, हस्डन व विनोदिनी देवी ने नागा जनजाति, गॉर्डेन (1914) ने खासी व जयंतिया जनजाति तथा कॉप (1985) ने दक्षिण भारत के कुरबस जनजाति द्वारा जीवंत महापाषाणिक संस्कृति के प्रयोग में ला ये जाने के उदाहरण प्रस्तुत किया है।

हेमनड्रॉफ (1945) ने महापाषाणिक संस्कृति को दो भागों में विभक्त किया है। प्रथम, दक्षिण भारत की महापाषाणिक संस्कृति जिसका संबंध केवल अतीत से रहा है। दूसरा, जीवंत परंपरा पर आधारित महापाषाणिक संस्कृति जिसका प्रयोग तत्कालीन समय में भी भिन्न–भिन्न जनजातियों द्वारा अभ्यास में लाया जा रहा था।

छोटानागपुर की महापाषाणिक परंपरा का संबंध जीवंत परंपरा से हैं। झारखण्ड में 32 प्रकार की जनजातियॉ है, जिनमें से केवल मुंडा, हो, असुर व उरॉव इत्यादि जनजातियॉ महापाषाणिक परंपरा का अनुपालन करती है। छोटानागपुर की महापाषाणिक परंपरा को मुंडारी भाषा में हड़गड़ी/पत्थलगड़ी/हड़सली इत्यादि नाम से जाना जाता है। 'जंग टोपा' नामक तिथि के अंतर्गत हड़गड़ी कार्यक्रम संपादित की जाती है। झारखण्ड में

मूल रूप से 'द्वितीयक शवाधान' पद्धति का अनुपालन अंतेष्ठि कर्मकांड व महापाषाणिक समाधियों के लिए किया जाता है। जिसमें सर्वप्रथम हिन्दू रीति–रिवाज पर आधारित मृतक शव को शवदाह या जलाया जाता है। इसके पश्चात् अवशेष अस्थि को एक मिट्टी के बर्तन (कलश) में रखकर एक निश्चित तिथि को 'कलश' को दफनाकर उसके ऊपर शिलापट्ट स्थापित कर दिया जाता है। जिसे हड़गड़ी परंपरा या महापाषाणिक परंपरा कहा जाता है।

छोटानागपुर नागपुर की महापाषाणिक परंपरा हजारीबाग, चतरा, रामगढ़, रॉची, खूँटी, चाइबासा, सिंहभूम तथा जामताड़ा इत्यादि जिले में आज भी महापाषाणिक परंपरा के प्रमाण मिलते है।

छोटानागपुर की पारंपरिक महापाषाणिक समाधियॉ मुख्य रूप से मुंडारी भाषा में दो प्रकार की होती है। प्रथम 'शासनदीरी' अर्थात् 'शासन' का तात्पर्य अस्थि से है, तथा 'दीरी' का अर्थ पत्थर है। इसका आशय अस्थि को दफनाने के पश्चात् पत्थर की स्थापना से है। दूसरे प्रकार में 'बीरीदीरी' प्रकार का महापाषाणिक पत्थर आता है। बीरीदीरी का आशय 'मेनिहिर' प्रकार के पत्थर से है।

तकनीकी रूप से समाधियों की संरचना के आधार पर कुल '7' प्रकार की महापाषाणिक समाधियों को वर्गीकृत किया जा सकता है। डोलमेन, मेनिहिर, क्षैतिज स्लैब, सामूहिक मेनिहिर, मेनिहिर के साथ डोलमेन, मेनिहिर के साथ क्षैतिज स्लैब एवं स्टोन सर्कल प्रकार के महापाषाणिक समाधि प्राप्त होते है। झारखण्ड में असामायिक मृत्यु से संबंधित व्यक्तियों के अस्थि–कलश को दफनाने के लिए पारंपरिक महापाषाणिक स्थल से पृथक गॉव के किसी सड़क के समीप महापाषाणिक समाधि स्थापित करने की परंपरा हैं।

इसके अतिरिक्त झारखण्ड की महापाषाणिक समाधियॉ गैर–शवाधान पद्धति से भी संबंधित है। इस श्रेणी में मुख्य रूप से डोलमेन व मेनिहिर प्रकार की महापाषाणिक पत्थरों के प्रमाण मिलते है। प्रायः सीमांकन के लिए, कृषि युक्त खेतो में, सिंग–बोरा (स्थानीय देवता) के लिए, न्याय के प्रतीक के रूप में, संघर्ष के प्रतीक में तथा उच्चतम न्यायालय

द्वारा सुनायें गये प्रमुख फैसलों (जनजातियों के हितों से संबंधित) के लिए भी वृहद पत्थरों को स्थापित किये जाने के प्रमाण मिलते है।

जीवंत परंपरा की प्रमुख विशेषता है कि महापाषाणिक समाधियों पर देवनागरी लिपि व हिन्दी भाषा में लिखे गये लेख के प्रमाण मिलते है। जिसमें मृतक के जन्मदिन, मृत्यु दिवस, मृत्यु के कारण एवं उसके पूर्वजों के नाम प्राप्त होते है।

वस्तुतः झारखण्ड की महापाषाणिक परंपरा न केवल पूर्वज–आराधना की ओर संकेत देती है वरन् साथ ही वंश परंपरा का उदाहरण भी प्रस्तुत करती है कि एक ही परिवार से जुड़े लोगों (कीली या खूँटकटी) का पृथक पारंपरिक महापाषाणिक स्थल के प्रमाण मिलते है। जिससे एक ही नृजातीय समुदाय के मृतक लोगों के कब्रगाह के प्रमाण मिलते है। किन्तु कुछ महापाषाणिक स्थल जैसे हजारीबाग तथा रामगढ़ (नापो, हहुआ व बसंतपुर) के महापाषाणिक परंपरा के संदर्भ में सटीक जानकारी प्राप्त नही होती है, कि ये किस समूह से संबंधित लोग थे? कारण कि उस क्षेत्र में जनजातीय समुदाय की संख्या न के बराबर है संभवतः वे विस्थापित हो चुके है एवं नजदीकी क्षेत्र में बसने वाली जनजातियॉ महापाषाणिक परंपरा का अनुसरण नहीं करती है।

यहॉ तक कि सामाजिक स्थिति के हिसाब से मृतक व्यक्ति के सम्मान में हड़गड़ी स्थापित करने के पश्चात् पूरे गॉव के लिए भोज आयोजित करने की परंपरा है। यह आयोजन मृतक व्यक्ति के परिवार के आर्थिक स्थिति एवं मृतक के प्रति सम्मान को प्रदर्शित करता है। निश्चित रूप से स्थानीय सामुदायिक समूह पर भोज आयोजन व समारोह आयोजन से वित्त का व्यापक प्रभाव पड़ता है। इससे समाज में प्रत्येक व्यक्ति के आर्थिक एवं सामाजिक हैसियत पर भी प्रकाश पड़ता है।

स्थानीय जनजातियों के बीच अन्य धर्मो के मानने वाले के संपर्क में आने से उनके पारंपरिक परंपरा में आमूल–चूल संशोधन दिखाई पड़ता है। हिन्दू धर्म के सम्पर्क में होने से स्थानीय मुंडा जनजाति की अंतेष्ठि रीति–रिवाज में हिंदू धर्म के प्रभाव दिखाई देते है। हिन्दू धर्म में परिवर्तित मुंडा जनजाति महापाषाणिक संस्कृति को 'सत्तवरवा' के नाम से

अनुष्ठान को संपादित करती है। मुंडा एवं उरॉव जनजातियों के ईसाई धर्म के संपर्क में आने से अनुष्ठान परंपरा में ईसाई धर्म के रीति–रिवाजों का प्रभाव देखा जा सकता है। मूल रूप से मुंडा जनजाति 'सरना धर्म' एवं प्रकृति पूजा से अविच्छिन रूप से जुड़ी हुई है, बावजूद अंतेष्ठि अनुष्ठान परंपरा में अन्य धर्मो के प्रभाव को देखा जा सकता है।

इस प्रकार एक ही प्रकार के खूँटकटी से संबंधित विस्थापित जनजातीय समुदायों का अंतेष्ठि अनुष्ठान एवं महापाषाणिक परंपरा के अंतर्गत संपादित किये जाने वाले हड़गड़ी कर्मकांड के माध्यम से वंश परंपरा, छोटानागपुर की जीवंत परंपरा (अंतेष्ठि अनुष्ठान) में प्रत्येक जनजाति समुदाय का पृथक महापाषाणिक स्थल अपरिहार्य रूप से परिलक्षित होता है। साथ ही एक ही प्रकार के जनजातियों के विभिन्न समुदायों का भी पृथक–पृथक हड़गड़ी स्थलों के प्रमाण प्राप्त होते है।

हड़गड़ी परंपरा में आधारभूत अंतर विभिन्न जनजातियों के महापाषाणिक परंपरा से उद्भाषित नहीं होता है किन्तु धार्मिक कारण व आर्थिक प्रभाव तथा सामाजिक विभेद के कारण सतही स्तर पर अनुष्ठान परंपरा में निश्चित रूप से अंतर को देखा जा सकता है।

महापाषाण की लम्बाई व्यक्ति के लिंग, उम्र व सामाजिक स्थिति के हिसाब से भिन्न–भिन्न हो सकती है। एक महापाषाणिक समाधि की भौतिक संरचनात्मक लम्बाई, ऊँचाई तथा गहराई दूसरे महापाषाणिक समाधि से पूरी तरह भिन्न दिखाई देती है।

इसके अतिरिक्त महापाषाणिक संरचना एवं सामाजिक–सांस्कृतिक परंपरा में विविधता भौगोलिक कारणों के साथ–साथ स्थानीय प्रचलन एवं अन्य धर्मों के प्रभाव के कारण से भी महापाषाणिक परंपरा में अंतर परिलक्षित होती है।

मुंडा, हो व असुर जनजाति का संबंध आस्ट्रो–एशियाटिक भाषाई समूह की प्रोटो–आस्ट्रोपोलॉयड समुदाय से स्वीकारा जाता है, जिनका संबंध मूलतः दक्षिण एशिया से हैं। वही झारखण्ड के ही उरॉव जनजाति का संबंध मूलतः दक्षिण भारत की द्रविडियन भाषाई परिवार से है। जिनका मूल भाषा 'कुरूख' है। उरॉव जनजाति दक्षिण भारत से संबंधित होने के बावजूद 'मुंडा' एवं 'हो' जनजातियों की महापाषाणिक परंपरा को अपने

अंतेष्ठि अनुष्ठान में आत्मसात कर लिया है। महापाषाणिक भौतिक संरचना के आधार पर तथा अनुष्ठानिक अंतेष्ठि के आधार पर उरॉव जनजाति की महापाषाणिक परंपरा मुंडा एवं हो जनजाति की महापाषाणिक परंपरा के अत्यन्त साम्य प्रतीत होती है।

इस प्रकार छोटानागपुर की महापाषाणिक परंपरा पर दक्कन व दक्षिण भारत की महापाषाणिक परंपरा का प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता है। न तो दक्षिण भारत को महापाषाणिक समाधियों के कोई तत्व छोटानागपुर के महापाषाणिक समाधियों में दिखाई पड़ते है। यहॉ की समाधियों में कब्रगाह के भीतर चेम्बर व सार्गोफेगी का प्रयोग न के बराबर हुए है। न ही यहॉ की महापाषाणिक समाधियों में पोर्टहॉल प्राप्त होते है। छोटानागपुर की महापाषाणिक समाधियों में 'कपमार्क्स' के बहुतायत प्रमाण मिलते है। छोटानागपुर से दक्षिण भारत के महापाषाणिक समाधि की भॉति जैसे गुफा–समाधि, टोपीकाल, कुडईकाल व मानवीय पत्थर प्रकार के महापाषाणिक परंपरा का प्रचलन नहीं दिखाई पड़ता है।

हालिया अध्ययनों से ज्ञात होता है कि उत्तर–पूर्व भारत की महापाषाणिक संस्कृति अद्भुत रूप से छोटानागपुर महापाषाणिक संस्कृति से एकात्म प्रतीत होती है। खासी–जयंतिया तथा मुंडा एवं हो इत्यादि सभी जनजातियों का संबंध आस्ट्रो–ऐशियाटिक भाषाई परिवार से है। तथा ये सभी जनजातियॉ वर्तमान में महापाषाणिक परंपरा को जीवंतता बनाये हुए है।

यद्यपि यह भी स्पष्ट है कि खासी एवं मुंडा की महापाषाणिक समाधियों की भौतिक संरचना में समानता दिखाई देती है किन्तु अनुष्ठाानिक अंतेष्ठि कर्मकांड परंपरा में दोनों की संस्कृति में अत्यन्त विषमता परिलक्षित होती है। खासी अनुष्ठान परंपरा में अटूट रूप से 'मातृसत्तात्मक' परंपरा के तत्व मिलते है। जबकि मुंडा, हो एवं असुर जनजातियों की सामाजिक 'पितृसत्तात्मक' परंपरा से अत्यधिक प्रेरित हैं।

छोटानागपुर की महापाषाणिक जीवंत परंपरा की रोचकता है कि स्थानीय जनजाति, जो जीविकोपार्जन के लिए शहर के लिए पलायन कर गये। उन्होंने शहर में ही रहकर

अपने मूलभूत परंपरा अथवा महापाषाणिक परंपरा का अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया। रॉची, खूँटी एवं सिंहभूम के शहरी इलाकों में भी महापाषाणिक समाधियों के प्रमाण मिलते है।

छोटानागपुर की महापाषाणिक संस्कृति को प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक रूप से विनष्ट होने से बचायें जाने तथा महापाषाणिक समाधियों का संरक्षण प्रदान करने की आवश्यकता है। प्राकृतिक रूप से मूसलाधार वर्षा एवं तेज पवनों के कारण कब्रगाह के मृदा का लगातार क्षरण होने से कब्रगाह के भीतर स्थापित अस्थि–कलश कब्र के ऊपर दिखना तथा कलश का ऊपर भाग का टूटना एवं मृतक का अस्थि अवशेष एवं दफनाये गये अन्य समाग्रियों के ऊपर आपने से महापाषाणिक संस्कृति को निश्चित रूप से क्षति पहुँची है। रामगढ़ जिले के हहुआ, नापो, बसंतपुर तथा रॉची जिले के बुरूडिह तथा खूँटी जिले से संबंधित महापाषाणिक स्थलों पर प्राकृतिक रूप से महापाषाणिक समाधियों को नुकसान पहुँचा है।

प्राकृतिक कारण के अतिरिक्त मानवीय कारण भी मूल रूप से महापाषाणिक समाधियों को नुकसान पहुँचाने में प्रमुख रूप से अधिक उत्तरदायी है। भौगोलिक रूप से झारखण्ड खनिज सम्पदा से सम्पन्न होने के कारण अनवरत् अवैध खनिज उत्खनन कार्यों एवं अत्यधिक परिवहन के आवागमन के कारण महापाषाणिक समाधियों को नुकसान पहुँचा है। अतः झारखण्ड के महापाषाणिक समाधियों को संरक्षण प्रदान करना एक महत्वपूर्ण सुनियोजित व हितवर्धक कार्य सिद्ध होगा। साथ ही स्थानीय जनजातियों को भी अति जागरूक करने की भी आवश्यकता है जिससे वे अपने संस्कृति को नुकसान पहुँचाने वाले तत्वों के प्रति जागरूक हो सकें।

छोटानागपुर की महापाषाणिक परंपरा पूर्वज–आराधना, लोक आस्था, लोक मान्यता, जन्म–मरण संबंधित अभिधारणा इत्यादि मिथकीय परिकल्पना, जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक समुदाय के उनके वंशजों तक परम्परा के हस्तानान्तरण का प्रतिबिम्ब है।

लोक मान्यता पर आधारित महापाषाणिक परंपरा, जिसका प्रचलन वर्तमान संदर्भ में भी है, इससे जुड़ी जनजातियों के किसी भी दस्तावेजों में सटीक व स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। वस्तुतः हमें इस संस्कृति के उजागर करने के लिए पुरातात्विक साक्ष्य व प्राप्त भौतिक अवशेषों एवं औपनिवेशिक कालीन बिहार के अधिकारियों एवं इसके पश्चात् के छोटानागपुर पर अध्ययन करने वाले शोधकर्ताओं की साहित्यों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

यद्यपि भौतिक संस्कृति पर दस्तावेज न होने के कारण तथा स्थानीय जनजातियों में जागरूकता के अभाव के कारण हमें पुरातात्विक साक्ष्यों पर निर्भर करना पड़ता है। तथापि केवल खूँटी टोली को 1960 के दशक एवं 1990 के दशक में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा उत्खनन कार्य सम्पन्न कराया गया है। वस्तुतः छोटानागपुर की महापाषाणिक संस्कृति पर वृहत प्रकाश डालने के लिए व्यवस्थित व वैज्ञानिक उत्खनन कार्य की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। कब्रगाह के भीतर न तो दफनाने की विधि की विविधता का स्पष्ट पता चलता है और न ही तत्कालीन समय के धातु विज्ञान (धातु शुद्धता एवं धातु) पर प्रकाश डालने में सहजता होती है।

अतः महापाषाणिक परंपरा से संबंधित छोटानागपुर में पुरातात्विक उत्खनन की आवश्यकता है। जिससे नवीन शोध आयामों का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक तरीके से अध्ययन कार्य को सम्पन्न किया जा सकें।